ISSN No. : 2394-0344 REMARKING : VOL-1 * ISSUE-8*January-2015

इस्लाम में मानव अधिकार

जमाल अहमद
विभागाध्यक्ष,
उर्दू विभाग,
संत कोलम्बा महाविद्यालय,
हजारीबाग, झारखण्ड।

हालिमा खातून
उर्दू विभाग,
आजाद नगर, पेलावल,
हजारीबाग, झारखण्ड।

सारांश

17वीं सदी के पहले विश्व में मानव–अधिकार और शहरी अधिकार की कोई कल्पना मौजूद नहीं थी एक लम्बे समय के बाद दार्शनिकों और कानूनविदों ने सर जोड़कर बैठा और एक ख्याल को पेश किया लेकिन अमलन इस कल्पना का सुबूत 18वीं सदी के आखिर में अमेरिका और फ्रांस के संविधानों में बुनियादी अधिकार के शक्ल में मिलता है। मगर देखा गया कि जो अधिकार कागज पर दिये गये वे जमीन पर नहीं उतर सके तो मौजूदा सदी के मध्य में संयुक्त राष्ट्र संघ ने, मानव–अधिकार का ऐलान (Universal Declatation of Human Rights) प्रकाशित किया। जिसमें नस्ल–कुशी (Genocide) के खिलाफ भी एक करारदाद मंजूर की गई, लेकिन हम सब जानते हैं कि इस इन्सानी हुकूक को जगह–जगह पामाल वही ताकतवर इंसान, देश करते रहे हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ उस इंसान या देश पर कोई उचित कारवाई भी नहीं कर पाई और न ही कर पा रही है।

मुख्य शब्द : मानव–अधिकारों का ऐलान, "हज्जेतुलवेदा, कमजोरो के अधिकार, जिन्दा रहने का अधिकार ,जान की हिफाजत , पाश्चात्य कौमों को गुलामसाजी

प्रस्तावना

यह उल्लेख है कि "एमनेस्टी इंटरनेशनल" में अपने प्रतिवेदनों में कहा है कि सभी बड़ी सरकारें और विभिन्न राजनीतिक विकासधारा समूहों से संबद्ध देश मानवाधिकार का हनन करते हैं। 150 देशों में 142 देश ने मानवाधिकार का उल्लंघन किया है।

दूसरी तरफ जब हम इस्लाम में इन्सानी हुकूक (मानव अधिकार) की बात करते हैं तो पाते हैं कि ये मजहबे इस्लाम के दिए हुए अधिकार इस्लाम धर्म का हिस्सा है। हर मुसलमान उनको हक तस्लीम करेगा और हर उस हुकूमत को इन्हें तस्लीम करना और लागू करना पड़ेगा जो इस्लाम की नामलेवा हो और जिसके चलाने वालों का यह दावा हो कि हम मुसलमान हैं। अगर वह ऐसा नहीं करते और इन अधिकारों को जो खुदा ने दिये हैं, छीनते हैं या उनमें तब्दीली करते हैं या अमलन उन्हें रौंदते हैं तो उनके बारे में कुरआन का फैसला यह है कि "जो लोग अल्लाह के हुक्म के खिलाफ फैसला करें वो मुसलमान नहीं है।"(5:44) इसके बाद दूसरी जगह फरमाया गया "वही जालिम हैं।"(5:45) और तीसरी आयत में फरमाया "वही फासिक हैं।"(5:47) दूसरे शब्दों में इन आयतों का मतलब यह है कि अगर वे खुद अपने अफकार और अपने फैसलों को बरहक समझते हों और खुदा के दिये हुए हुक्मों को झूठा करार देते हों तो वे मुसलमान नहीं हैं और अगर वह हक तो खुदाई हुक्मों ही को समझते हों, मगर अपने खुदा की दी हुई चीज को जानबूझ कर रद्द करते और अपने फैसले उसके खिलाफ लागू करते हों तो वे फासिक और जालिम हैं। फासिक उसको कहते हैं जो फरमाबरदारी से निकल जाये, और जालिम वह है जो हक के खिलाफ काम करे। लिहाजा इनका मामला दो सूरतों से खाली नहीं है, या वे कुफ्र में फंसे हैं, या फिर वे फिस्क और जुल्म में फंसे हैं। बहरहाल जो हुकूक अल्लाह ने इन्सान को दिये हैं, वे हमेशा रहने वाले हैं, अटल हैं। उनके अन्दर किसी तब्दीली या कमी–बेशी की गुंजाइश नहीं है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) खुतबा "हज्जेतुलवेदा" जो रसूल (सल्ल०) की जिन्दगी का आखिरी खुतबा था में फरमाते हैं कि "ऐ लोगों मजहबें इस्लाम में किसी गोरे को काले पर, किसी अमीर को गरीब पर, किसी दौलतमंद को मुफ्लिस पर, किसी ताकतवर को कमजोर पर, किसी अरबी को नजमी पर, कोई फजीलत नहीं मजहबें इस्लाम में न कोई ऊँचा है न कोई नीचा, इस्लाम में अगर कोई बड़ा होगा वो तकवा के बुनियाद पर होगा। दौलतमंद को मुफ्लिस पर, किसी ताकतवर को कमजोर पर, किसी अरबी को नजमी पर, कोई फजीलत नहीं मजहबें इस्लाम में न कोई ऊँचा है न कोई

इस्लाम में अगर कोई बड़ा होगा वो तकवा के बुनियाद पर होगा।

"यह बेमिशाल खुतबा को हम इस्लामी अधिकारों का घोषणा–पत्र कहते हैं जिसे चौदह सौ साल पहले दस्तावेजी शक्ल में घोषित किया गया था आज हमें इसे दुनिया का सबसे पहला "मानव–अधिकार" का घोषणा–पत्र भी कहें तो शायद अनुचित न होगा।"

इस्लाम न सिर्फ यह कि किसी रंग व नस्ल के भेद–भाव के बगैर तमाम इन्सानों के बीच बराबरी को मानता है, बल्कि उसे एक महत्वपूर्ण सत्य नियम करार देता है। कुरआन में अल्लाह ने फरमाया है कि "ऐ इन्सानों! हमने तुमको एक मां और एक बाप से पैदा किया।" दूसरे शब्दों में, इसका मतलब यह हुआ कि तमाम इन्सान अस्ल में भाई–भाई हैं, एक ही मां और एक ही बाप की औलाद हैं। "और हमने तुमको कौमों और कबीलों में बांट दिया, ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो।"(49:13) यानी कौमों और कबीलों में यह तक्सीम पहचान के लिए है। इसलिए है कि एक कबीले या एक कौम के लोग आपस में एक दूसरे से परिचित हों और आपस में सहयोग कर सकें। यह इसलिए नहीं है कि एक कौम दूसरी कौम पर बड़ाई जताये और उसके साथ घमण्ड से पेश आये, उसको कमजोर और नीचा समझे और उसके अधिकारों पर डाके मारे। "हकीकत में तुममें इज्जत वाला वह है, जो तुममें सब से ज्यादा खुदा से डरने वाला है।"(49:13) यानी इन्सान पर इन्सान की बड़ाई सिर्फ पाकीजा किरदार और अच्छे आचरण की बिना पर है, न कि रंग व नस्ल जुबान या वतन की बिना पर। और यह बड़ाई भी इस गरज के लिए नहीं है कि अच्छे किरदार और आचरण के लोग दूसरे इन्सानों पर अपनी बड़ाई जतायें, क्योंकि बड़ाई जताना स्वयं में एक बुराई है, जिसको कोई धर्म परायण और परहेजगार आदमी नहीं कर सकता और यह इस गरज के लिए भी नहीं है कि नेक आदमी के अधिकार बुरे आदमियों के अधिकारों से बढ़कर हों, या उसके अधिकार उनसे ज्यादा हों, क्योंकि यह इन्सानी बराबरी के खिलाफ है, जिसको इस आदत के शुरू में नियम के तौर पर बयान किया गया है। यह बड़ाई और इज्जत असल में इस वजह से है कि नेकी और भलाई नैतिक–दृष्टि से बुराई के मुकाबलें में बहरहाल श्रेष्ठ है।

इस्लाम के आने से पहले कमजोरों के अधिकार अरब में ही नहीं दुनिया में किसी भी जगह सुरक्षित नहीं थे। उनका बुरी तरह शोषण हो रहा था और उनपर जुल्म–ज्यादती आखिरी हद को पहुंच चुकी थी। इस्लाम ने शुरू से उनके हक में आवाज उठाई और उनपर जो जुल्म–ज्यादती हो रही थी उसपर कठोर दंड की धमकी दी। दुनिया और आखिरत (लोक–परलोक) में उसके बुरे अंजाम से खबरदार किया। उसने औरतों के अधीनस्थों और शासितों के बेबसों, बूढ़ों और कमजोरों के अधिकार सिर्फ ब्यान ही नहीं किए, बल्कि व्यावहारिक रूप से उपलब्ध किए और समुदाय तथा समाज को उनके साथ बेहतर से बेहतर आचरण की प्रेरणा दी और सहानुभूति और सहायता की भावना पैदा की।

जिन्दा रहने का अधिकार

इस्लाम में मानव अधिकार का जो सबसे बड़ा अधिकार दिया इनमें सबसे पहली चीज जिन्दा रहने का अधिकार और इन्सानी जान के आदर का कर्तव्य है। कुरआन में फरमाया गया है कि "जिस आदमी ने किसी एक इंसान को कत्ल किया, बगैर इसके कि उससे किसी जान का बदला लेना हो, या वह जमीन में फसाद फैलाने का मुजरिम हो, उसने मानो तमाम इन्सानों को कत्ल कर दिया।"(5:32) जहां तक खून का बदला लेने या जमीन में फसाद फैलाने पर सजा देने का सवाल है, इसका फैसला एक अदालत ही कर सकती है। या किसी कौम से जंग हो तो एक बाकायदा हुकूमत ही इसका फैसला कर सकती है। बहरहाल किसी आदमी को व्यक्तिगत रूप से यह अधिकार नहीं है कि खून का बदला ले या जमीन में फसाद फैलाने की सजा दे। इसलिए हर इन्सान पर यह वाजिब है कि वह हरगिज किसी इन्सान का कत्ल न करे। अगर किसी ने एक इन्सान का कत्ल किया तो यह ऐसा है जैसे उसने तमाम इन्सानों को कत्ल कर दिया। इसी बात को दूसरी जगह पर कुरआन में इस तरह दुहराया गया है –

"किसी जान को हक के बगैर कत्ल न करो, जिसे अल्लाह ने हराम किया है।" (6:152) यहां भी कत्ल की मनाही को ऐसे कत्ल से अलग किया गया है जो हक के साथ हो, और हक का फैसला बहरहाल कोई अधिकार रखने वाली अदालत ही करेगी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने किसी जान के कत्ल को शिर्क के बाद सबसे बड़ा गुनाह करार दिया है। "सबसे बड़ा गुनाह अल्लाह के साथ शिर्क और किसी 'नफ्स' को कत्ल करना है।" इन तमाम आयतों और हदीसों में स्वतंत्र रूप से 'नफ्स' का लफ्ज इस्तेमाल किया गया है जो किसी खास नफ्स को कत्ल करना है।" इन तमाम आयतों और हदीसों में स्वतंत्र रूप से 'नफ्स' का लफ्ज इस्तेमाल किया गया है जो किसी खास नफ्स को मखसूस नहीं करता कि उसका मतलब यह लिया जा सके कि अपनी कौम या अपने मुल्क की शहरी, या किसी खास नस्ल, रंग या वतन, या मजहब के आदमी को कत्ल न किया जाये। हुक्म तमाम इन्सानों के बारे में है और बजाये खुद हर इन्सानी जान को हलाक करना हराम किया गया है।

जीने का अधिकार 'इन्सान' को सिर्फ इस्लाम ने दिया है

आज हम देखते है कि जो लोग मानव–अधिकारों का नाम लेते हैं, उन्होंने अगर अपने संविधानों में या ऐलानों में कहीं मानव–अधिकारों का जिक्र किया है तो हकीकत में इसमें यह बात छिपी (Implied) होती है कि यह हक या तो उनके अपने नागरिकों के हैं, या फिर वह उनको सफेद नस्ल वालों के लिए खास समझते हैं। जिस तरह आस्ट्रेलिया में इन्सानों का शिकार करके सफेद नस्ल वालों के लिए पुराने बाशिन्दों से जमीन खाली कराई गई और अमेरिका में वहां के पुराने बाशिन्दों की नस्लकुशी की गई और जो लोग बच गये उनको खास इलाकों (Reservation) में कैद कर दिया गया और अफ्रीका के विभिन्न इलाकों में घुस कर इन्सानों को जानवरों की तरह हलाक किया गया, यह सारी चीजें इस बात को साबित करती है कि इन्सानी जान का 'इन्सान' होने की हैसियत से कोई आदर उनके दिल में नहीं है। अगर कोई आदर है तो अपनी कौम या अपने रंग या अपनी नस्ल की बुनियाद पर है। लेकिन इस्लाम तमाम इन्सानों के लिए इस हक को तस्लीम करता है। अगर कोई आदमी जंगली कबीलों से संबंध रखता है तो उसको भी इस्लाम इन्सान ही समझता है।

जान की हिफाजत का हक

कुरआन की जो आयत आगे आया है उसके फौरन बाद यह फरमाया गया है कि "और जिसने किसी नफ्स को बचाया उसने मानो तमाम इन्सानों को जिन्दगी बख्शी।" (5:32) आदमी को मौत से बचाने की बेशुमार शक्लें हैं। एक आदमी बीमार या जख्मी है, यह देखे बगैर कि वह किस नस्ल, किस कौम या किस रंग का है, अगर वह आपको बीमारी की हालत में या जख्मी है, यह देखे बगैर कि वह किस नस्ल, किस कौम या किस रंग का है, अगर वह आपको बीमारी की हालत में या जख्मी होने की हालत में मिला है तो आपका काम यह है कि उसकी बीमारी या उसके जख्म के इलाज की फिक्र करें। अगर वह भूख से मर रहा है तो आपका काम यह है कि उसको खिलायें ताकि उसकी जान बच जाये। अगर वह डूब रहा है या और किसी तरह से उसकी जान खतरे में है तो आपका फर्ज है कि उसको बचाए।

औरत की आबरू का आदर

इस्लाम के दिये हुये मानव–अधिकारों में यह है कि औरत की अस्मत और इज्जत हर हाल में आदर के योग्य है, चाहे औरत अपनी कौम की हो, या दुश्मन कौम की, जंगल बियाबान में मिले या फतह किये हुये शहर में, हमारी अपने मजहब की हो या दूसरे मजहब से उसका ताल्लुक हो, या उसका कोई भी मजहब हो, मुसलमान किसी हाल में भी उस पर हाथ नहीं डाल सकता। और अगर कोई मुसलमान इस काम को करता है तो वह इसकी सजा से नहीं बच सकता, चाहे दुनिया में सजा पाये या आखिरत में। औरत के सतीत्व के आदर का यह तसव्वुर इस्लाम के सिवा कहीं नहीं पाया जाता। पाश्चात्य फौजों को तो अपने मुल्क में भी 'काम वासना की पूर्ति' के लिए खुद अपनी कौम की बेटियां चाहिए होती हैं। और गैर कौम के देश पर उनका कब्जा हो जाये तो उस देश की औरतों की जो दुर्गत होती है, वह किसी से छुपी हुई नहीं है। लेकिन मुसलमानों की तारीख–व्यक्तिगत इंसानी गलतियों को छोड़कर इससे खाली रही है।

तंगदस्त का यह हक है कि उसकी मदद की जाये

कुरआन में यह हुक्म दिया गया है कि "और मुसलमानों के मालों में मदद मांगने वाले और महरूम रह जाने वाले का हक है।"(5:19) पहली बात तो यह कि इस हुक्म में जो शब्द आये हैं वे सबके लिए हैं, उसमें मदद करने को किसी धर्म विशेष के साथ खास नहीं किया गया है, और दूसरे यह कि यह हुक्म मक्के में दिया गया था, जहां मुस्लिम समाज का कोई बाकायदा वजूद ही नहीं था। और आम तौर पर मुसलमानों का वास्ता गैर–मुस्लिम आबादी ही से होता था। इसलिए कुरआन की उक्त आयात का साफ मतलब यह है कि मुसलमान के माल पर हर मदद मांगने वाले और हर तंगदस्त और महरूम रह जाने वाले इन्सान का हक है। यह हरगिज नहीं देखा जायेगा कि वह अपनी कौम या अपने देश का है या किसी दूसरी कौम, देश या नस्ल से उसका संबंध है। आप हैसियत और सकत रखते हों और कोई जरूरतमंद आपसे मदद मांगे, या आपको मालूम हो जाये कि यह जरूरतमंद है तो आप जरूर उसकी मदद करें। खुदा ने आप पर उसका यह हक कायम कर दिया है।

हर इन्सान की आजादी का हक

इस्लाम में किसी आजाद इन्सान को पकड़ कर गुलाम बनाना या उसे बेच डालना बिल्कुल हराम करार दिया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साफ शब्द ये हैं कि तीन किस्म के लोग हैं। जिनके खिलाफ कियामत के दिन मैं खुद इस्तिगासा दायर करूंगा। उनमें से एक वह आदमी है, जो किसी आजाद इन्सान को पकड़ कर बेचे और उसकी कीमत खाये। रसूल (सल्ल०) के इस फरमान के शब्द भी आम हैं। उसको किसी कौम या नस्ल या देश व वतन के इन्सान के साथ खास नहीं किया गया है। पाश्चात्य लोगों को बड़ा गर्व है कि उन्होंने गुलामी का खात्मा किया है। हालांकि उन्हें यह कदम उठाने का अवसर पिछली सदी के बीच में मिला है। उससे पहले जिस बड़े पैमाने पर वे अफ्रीका से आजाद इन्सानों को पकड़–पकड़ कर अपनी नव–आबादियों में ले जाते रहे हैं और उनके साथ जानवरों से भी बुरा सुलूक करते रहे हैं, इसका जिक्र उनकी अपनी ही लिखी हुई किताबों में मौजुद है।

पाश्चात्य कौमों को गुलामसाजी

अमेरिका और हिन्द के पश्चिमी जजीरों वगैरह पर इन कौमों का कब्जा होने के बाद साढ़े तीन सौ साल तक गुलामी की यह जालिमाना तिजारत जारी रही है। अफ्रीका के जिस तट पर देश के अन्दर से काले लोगों को पकड़ कर लाया जाता और बन्दरगाहों से उनको आगे भेजा जाता था, इसका नाम 'गुलामों का तक' (Slave Coast) पड़ गया था। सिर्फ एक सदी में (1680 ई० से 1786 ई० तक) सिर्फ ब्रिटेन के कब्जा किये हुए इलाकों के लिए, जितने आदमी पकड़ कर ले जाये गये उनकी तादाद खुद ब्रिटेन के लेखकों ने दो करोड़ बताई है। सिर्फ एक साल ऐसा बताया गया है। (सन् 1790 ई०) जिसमें पिचहत्तर हजार अफ्रीकी पकड़े और गुलाम बनाये गये। जिन जहाजों में वे ले जाये जाते थे, उनमें इन अफ्रीकियों को बिल्कुल जानवरों की तरह ठूंस कर बन्द कर दिया जाता था और बहुतों को जंजीरों से बांध दिया जाता था। उनको न ठीक से खाना दिया जाता था, न बीमार पड़ने या जख्मी हो जाने की सूरत में उनके इलाज की फिक्र की जाती थी। पाश्चात्य लेखकों का अपना बयान है कि गुलाम बनाने और जबरदस्ती खिदमत लेने के लिए जितने अफ्रीकी पकड़े गये थे, उनमें से 20 प्रतिशत का रास्ते ही में खात्मा हो गया। यह भी अंदाजा किया जाता है कि सामूहिक रूप से विभिन्न पाश्चात्य कौमों ने जितने लोगों को पकड़ा था उनकी तादाद दस करोड़ तक पहुंचती थी। इस तादाद में तमाम पाश्चात्य कौमों की गुलाम साजी के आदाद व शुमार शामिल हैं। ये हैं वे लोग जिनका यह मुंह है कि हम पर रात दिन गुलामी को जायज रखने का इल्जाम लगाते रहे हैं। मानो नकटा किसी नाक वाले को ताना दे रहा है कि तेरी नाक छोटी है।

इस्लाम में गुलामी की हैसियत

संक्षेप में मैं आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि इस्लाम में गुलामी की हैसियत क्या है। अरब में जो लोग इस्लाम से पहले के गुलाम चले आ रहे थे, उनके मामले को इस्लाम ने इस तरह हल किया कि हर मुमकिन तरीकों से उनको आजाद करने की प्रेरणा दी गई। लोगों को हुक्म दिया गया कि अपने कुछ गुनाहों के प्रायश्चित के तौर पर उनको आजाद करें। अपनी खुशी से खुद किसी गुलाम को आजाद करना एक बड़ी नेकी का काम करार दिया गया।

यहां तक कहा गया कि आजाद करने वाले का हर अंग उस गुलाम के हर अंग के बदले में दोजख से बच जायेगा। इसका नतीजा यह हुआ कि 'खिलाफते राशिदा' के दौर तक पहुंचते–पहुंचते अरब के तमाम पुराने गुलाम आजाद हो गये।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने खुद 63 गुलाम आजाद किये। हजरत आइशा (रजि०) के आजाद किये हुए गुलामों की तादाद 67 थी। हजरत अब्बास (रजि०) ने 70, हजरत अब्दुल्लाह बिन उमर (रजि०) ने एक हजार और अब्दुर्रहमान बिन औफ (रजि०) ने बीस हजार गुलाम खरीद कर आजाद कर दिये। ऐसे ही बहुत से सहाबा (रजि०) के बारे में रिवायतों में तफसील आई है कि उन्होंने खुदा के कितने बन्दों को गुलामी से मुक्त किया था। इस तरह पुराने दौर की गुलामी का मसला तीस–चालीस साल में हल कर दिया गया।

मौजूदा जमाने में इस मसले का जो हल निश्चित किया गया है, वह यह है कि जंग के बाद दोनों तरफ के जंगी कैदियों का तबादला कर लिया जाये। मुसलमान इसके लिए पहले से तैयार थे, बल्कि जहां कहीं मुखालिफ पक्ष ने कैदियों के तबादले को कुबूल किया, वहां बगैर झिझक इस बात पर अमल किया गया। लेकिन अगर इस जमाने की किसी लड़ाई में एक हुकूमत पूरे तौर पर हार खा जाये और जीतने वाली ताकत अपने आदमियों को छुड़ा ले और हारी हुई हुकूमत बाकी ही न रहे कि अपने आदमियों को छुड़ा सके तो तजुर्बा यह बताता है कि पराजित कौम के कैदियों को गुलामी से बदतर हालत में रखा जाता है। हमें बताया जाये कि पिछले विश्व युद्ध में रूस ने जर्मनी और जापान के जो कैदी पकड़े थे, उनका अन्जाम क्या हुआ। उनका आज तक हिसाब नहीं मिला है। कुछ नहीं मालूम कि कितने जिन्दा रहे और कितने मर खप गये। उनसे जो खिदमतें ली गयीं, वे गुलामी की खिदमत से बदतर थीं। शायद फिरऔन के जमानें में अहराम बनाने के लिए गुलामों से उतनी जालिमाना खिदमतें न ली गई होंगी जितनी रूस में साइबेरिया और पिछड़े इलाकों को तरक्की देने के लिए जंगी कैदियों से ली गयीं।

हर इन्सान का यह हक है कि उसके साथ न्याय किया जाये

यह एक बहुत अहम अधिकार है, जो इस्लाम ने इन्सान का इन्सान होने की हैसियत से दिया है। कुरआन में आया है कि "किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इतना न भड़का देने कि तुम नामुनासिब ज्यादती करने लगो।"(5:8) आगे चलकर इसी सिलसिले में फिर फरमाया, "और किसी गिरोह की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि तुम इन्साफ से हट जाओ, इन्साफ करो, यही धर्म परायणता से करीबतर है।"(5:8) एक और जगह फरमाया गया है कि "ऐ लोगों! जो ईमान लाये हो, इन्साफ करने वाले खुदा वास्ते के गवाह बनो।"(5:8) मालूम हुआ कि आम इन्सान ही नहीं दुश्मनों तक से इन्साफ करना चाहिए। दूसरे शब्दों में इस्लाम जिस इन्साफ की दावत देता है, वह सिर्फ अपने देश के रहने वालों के लिए या अपनी कौम के लोगों के लिए या मुसलमानों के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के सब इन्सानों के लिए है। हम किसी से भी बेइन्साफी नहीं करते, हमारा हमेशा रवैया यह होना चाहिए कि कोई आदमी भी हमसे बे–इन्साफी का अंदेशा न रखे और हम हर जगह हर आदमी के साथ न्याय और इन्साफ का ख्याल रखें।

भलाई के कामों में हर एक से सहयोग और बुराई में किसी से सहयोग नहीं

इस्लाम ने एक बड़ा अहम उसूल यह पेश किया है कि "नेकी और परहेजगारी में सहयोग करो। बदी और गुनाह के मामले में सहयोग न करो।"(5:2) इसके माने यह हैं कि जो आदमी भलाई और खुदा तरसी का काम करे, यह देखे बगैर कि वह उत्तर का रहने वाला हो या दक्षिण का, वह यह हक रखता है कि हम उसका सहयोग करेंगे। इसके विपरीत जो आदमी बदी और ज्यादती का काम करे चाहे वह हमारा करीबी पड़ोसी या रिश्तेदार ही क्यों न हो, उसका न यह हक है कि नस्ल व वतन या भाषा और कौमियत के नाम पर वह हमारा सहयोग मांगे, न उसे हम से यह उम्मीद रखनी चाहिए कि हम उससे सहयोग करेंगे। न हमारे लिये यह जायज है कि ऐसे किसी काम में उसके साथ सहयोग करे। बदकार हमारा भाई ही क्यों न हो, हमारा और उसका कोई साथ नहीं है। नेकी का काम करने वाला चाहे हमसे कोई रिश्ता न रखता हो, हम उसके साथी और मददगाार हैं, या कम से कम खैरख्वाह और शुभचिंतक तो जरूर ही हैं।

इस सबके बावजूद आज कुछ मुसलमान खुद या मुस्लिम मुल्क इन बातों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। पिछले दिनों पाकिस्तान में मासूस स्कूली बच्चों की हत्या, बम्बे हत्याकांड के मुजरिज के रिहाई आदि। इसका ये मतलब नहीं है कि इस्लाम या इस्लाम के मानने वाले गलत रास्ते में चलना शुरू कर दिये हैं। क्योंकि जो इस्लाम में मुकम्मल ईमान जो रखते हैं वो अपने जिन्दा रहते हुकूक के इंसानी (मानव अधिकार) को न ही पामाल करेंगे और न पामाल होते देख सकते हैं क्योंकि हुकूक के इंसानी ही उनका दीन है।

संदर्भ सूची

1. इस्लाम आतंक या आदेश, स्वामी लक्ष्मी शंकराचार्या, प्रकाशन स्वामी लक्ष्मी शंकराचार्या, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
2. इतिहास के साथ यह अन्याय, प्रो० बी० एन० पाण्डेय, पूर्व राज्यपाल सह इतिहासकार,प्रकाशन मधुकर संदेश संगम, दिल्ली
3. रसूल की सिरत, जस्टिस ओमकार दास,
4. इंसानी हुकूक, मुक्ती अनवर निजामी
5. मुकम्मल तरीखुल इस्लाम, शौकत अली फहमी